भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए संक्रांति पथ:हाथी को बाघ में रूपांतरित करने के छ: उपाय*

के. सी. चक्रवर्ती

डेल्ही चैप्टर ऑफ यंग प्रेसिडेंट्स ऑर्गनाइज़ेशन के श्री प्रभात जैन तथा अन्य सदस्य ! भारतीय उद्योग जगत के कुछ युवा नायकों के बीच यहाँ आना मेरे लिए अत्यंत हर्ष की बात है। मुझे विश्वास है कि ये नायक निकट भविष्य में अपने उद्यमों को नेतृत्व प्रदान करते रहेंगे और भारतीय अर्थव्यवस्था को आगे ले जाने के लिए उपयुक्त स्वरूप प्रदान करने में भारी योगदान देते रहेंगे। मुझे कहा गया है कि आज मैं आपसे 'ट्रान्सफ़ार्मिंग द एलिफैंट इनटु ए टाइगर' विषय पर आपसे बातें करूँ। इस विषय में मैं उन छह उपायों का सुझाव दूँगा जो मेरे विचार से इस रूपांतरण के लिए अनिवार्य हैं। फिर भी आरंभ में यहाँ आकर इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अपना विचार रखने के लिए, मुझे आमंत्रित करने हेतु मैं डेल्ही चैप्टर ऑफ द यंग-प्रेसिडेंट्स ऑर्गनाइज़ेशन को धन्यवाद देता हूँ। वस्तुतः यंग प्रेसिडेंट्स ऑर्गनाइज़ेशन ने अपने को अर्थव्यवस्था, कारोबार और समाज के लिए अत्यंत महत्त्व के मुद्दों के संबंध में, वैश्विक युवा कारोबारी नायकों के असाधारण नेटवर्क तथा विचारक-मंडल के रूप में स्थापित किया है। मुझे बताया गया है कि इस नेटवर्क ने पहले कुछ अत्यंत विद्वान वक्ताओं को यहाँ आमंत्रित किया था। इसलिए मुझे उनकी ऊँची आशाओं पर खरा उतरना होगा। मेरा विश्वास है कि वाणिज्यिक बैंकों और केंद्रीय बैंक में कई दशकों के मेरे अनुभव से मुझे उद्यम, अभिशासन, वृद्धि और समाज तथा राष्ट्र-निर्माण पर पड़ने वाले इनके प्रभावों के विषय में अच्छी समझ प्राप्त हुई है जिसे मैं आज आपके समक्ष रखूँगा। आशा है कि आप को मेरी जानकारी रुचिकर और अनुकरण योग्य लगेगी।

अब मैं आज के विषय पर ध्यान केंद्रित करूँगा। हाथी को बाघ का रूप देने का मतलब अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग हो सकता है। वस्तुतः अधुनातन आनुवंशिकी इस तरह के परिवर्तन की बात अभी भी नहीं सोच सकती। आंग ली या स्टीवेन स्पीलबर्ग इस तरह का परिवर्तन दिखाने के लिए वस्तुतः कम्प्यूटर जनरेटेड स्पेशल इफेक्ट्स का प्रयोग तो कर सकते हैं, लेकिन अब वास्तविक परिवर्तन लाने का समय आ गया है - विशेषतः इस बात को दृष्टिगत रखते हुए कि हाथी के रूपक का प्रयोग, भारतीय अर्थव्यवस्था को द्योतित करने के लिए किया गया है तथा इसके माध्यम से हमारे जीवन और हमारे बच्चों के भविष्य पर विचार किया गया है।

वर्ष 2007 में डॉ. शशि थरूर ने ''द एलिफैन्ट, द टाइगर ऐण्ड द सेलफोन :रिफ्लेक्शन्स ऑन इंडिया : द इमर्जिंग ट्वेंटीफर्स्ट सेंचुरी पॉवर'' नामक एक बड़ी आकर्षक पुस्तक लिखी थी। मुख्यतः इतिहास, संस्कृति और सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों के बारे में विचार करने वाली इस पुस्तक में अजंता, एलोरा और क्रिकेट से लेकर सेलफोन और कॉल सेंटर्स तक के भारतीय जीवन पर प्रकाश डाला गया है तथा दैनिक जीवन में परिवर्तन लाने वाले और भारतीय जनमानस में आत्मविश्वास पैदा करने वाले भारत की वृद्धि की बड़े सरल शब्दों में चर्चा की गयी है। दिसंबर 2008 में लंदन के एकोनॉमिस्ट ने एक विशेष रिपोर्ट प्रकाशित की कि भारत हाथी है, न कि बाघ। इसमें यह भी बताया गया था कि अपनी अव्यवस्था, नौकरशाही तथा समय-समय पर होनेवाली हिंसा के बारे में, भारत पिछले कुछ अत्यंत सफल वर्षों का दौर देख चुका है। लेकिन उसमें इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया गया था कि भारत आर्थिक मंदी तथा उसके तुरंत बाद आने वाले आम चुनावों से कैसे जूझ पायेगा? इसमें यह भी कहा गया था कि लोकतंत्र से जुड़े करों में वृद्धि हो रही है और संकट के बादल मंडरा रहे हैं। लेकिन बाद की घटनाओं ने यह साबित कर दिया कि उक्त अनुमान वास्तविकता से बहुत दूर थे। चुनावों ने अनिश्चितता को दूर कर दिया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में V-आकारवाली बहाली हुई तथा वर्ष 2009-10 और 2010-11 के दौरान इसने 8.4 प्रतिशत की वृद्धि दर हासिल की। इसके बावजूद हमारा उत्साह कम हो गया तथा हमने बाघ की खाल का जो लबादा ओढ़ रखा था उसमें दरार पड़ गयी और वह स्पष्टतः दिखाई देने लगी।

जुलाई 2011 में मेरे पत्रकार मित्र और भारत की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के गंभीर समीक्षक श्री स्वामिनाथन् अंकलेसरिया अय्यर ने कैटो इन्स्टीटयूट के लिए एक आलेख तैयार किया जिसका शीर्षक था 'द एलिफैन्ट दैट बीकेम ए टाइगर''। इस आलेख में उन्होंने बड़ा ही विश्वासोत्पादक तर्क दिया कि भारत में बीस वर्षों के आर्थिक सुधारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को एक बाघ का रूप प्रदान कर दिया है। उसी वर्ष बाद में रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. सुब्बाराव ने हक्सर मेमोरियल लेक्चर देते हुए यह तर्क दिया कि ''हो सकता

* नई दिल्ली में यंग प्रेसिडेंट्स ऑर्गनाइजेशन डेल्ही चैप्टर के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श के दौरान भारतीय रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर डॉ. के. सी. चक्रवर्ती द्वारा 7 दिसंबर 2012 को दिया गया भाषण। इस भाषण को तैयार करने में डॉ. मृदुल सागर द्वारा प्रदत्त सहायता के लिए आभार व्यक्त किया जाता है।

है कि भारत हाथी हो, लेकिन हाथी भी नृत्य कर सकता है।'' हाथी के नृत्य में वैश्विक वित्तीय संकट के रूप वाली ज़ू पार्टी से व्यवधान पड़ा। इसके बाद उन्होंने हाथी के नृत्य को नया स्वरूप प्रदान करके भारतीय अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए दस उपायों का सुझाव दिया।

उस समय से आरंभ करके भारत में वृद्धि कम होकर वर्ष 2011-12 में 6.5 प्रतिशत हो गयी तथा वृद्धि में गिरावट के कई बड़े जोखिमों के कारण वर्ष 2012-13 में यह 5.8 प्रतिशत रह सकती है। राजकोषीय तथा भुगतान संतुलन संबंधी - दोनों घाटों ने मिलकर हमारी समस्याओं को और जटिल कर दिया है। इससे हम यह सोचने के लिए विवश हो गये हैं कि हम हाथी हैं या बाघ या केवल बकरी जिसे वैश्विक शक्तियाँ तथा हमारी अपनी अकर्मण्यता निगल जायेंगी? इसलिए क्या हम बाघ बनने का सपना पालते रहें? यदि हाँ तो बाघ का तमगा प्राप्त करने के लिए हमें क्या करने की जरूरत है?

हाथी और बाघ में से हमें किसे चुनना चाहिए

इस बात पर विचार करने से पहले कि हमें क्या करने की जरूरत है, सबसे पहले हमें यह समझना चाहिए कि इन रूपकों का तात्पर्य क्या है। इसलिए सबसे पहले मैं हाथी और बाघ की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा करूँगा। हाथी के बारे में चार खास बातें ध्यान देने योग्य हैं - उसका आकार, उसकी शाकाहारी प्रकृति, उसकी धीमी गति और उसकी शरीर-रचना - जिसमें उसके बड़े-बड़े कान, उसकी सूँड़ और उसके गजदंत शामिल हैं। दूसरी ओर बाघ उतना बड़ा नहीं है जितना कि हाथी, लेकिन वह बिल्ली प्रजाति के जीवों में सबसे बड़ा है, वह मांसभक्षी है तथा अपनी गति और फुर्ती के लिए मशहूर है। उसकी शरीर-रचना में उसके शरीर की धारियाँ, उसके शक्तिशाली जबड़े और छुरी जैसे तेज़ दाँत, नुकीले पंजे और रीढ़ की लचीली हड्डी शामिल हैं। लेकिन दोनों में सबसे बड़ा अंतर है - बाघ की मार देने की नैसर्गिक प्रवृत्ति।

मेरे विचार से, आकार की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था वास्तव में हाथी है। इसके प्रजातांत्रिक ढाँचे की दृष्टि से इसका व्यवहार शाकाहारी कहा जा सकता है जो बाघों और मगरों की मांसभक्षी आदतों से भिन्न है। गति की दृष्टि से कई लोगों को यह भ्रम है कि हाथी तेजी से चल या दौड़ नहीं सकते लेकिन वास्तविकता यह है कि हाथी पच्चीस मील प्रति घंटे की रफ्तार से चल सकते हैं, जबकि बाघ उससे केवल थोड़ा सा ही ज्यादा दौड़ सकते हैं। बंगाल टाइगर 35 मील प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ सकते हैं लेकिन वह भी थोड़ी-थोड़ी दूरी के लिए, और वे इस गति को लंबी दूरी तक के लिए नहीं बनाये रख सकते।

इसलिए मेरे विचार से, यह सर्वमान्य सत्य नहीं है कि किसी व्यक्ति को हाथी को बाघ में बदलने का प्रयास करना चाहिए। इतना जरूर है कि हम हाथी की गति में थोड़ी वृद्धि कर सकते हैं लेकिन हमारा वास्तविक लक्ष्य बाघ की प्राणघाती प्रवृत्ति विकसित करना होना चाहिए। अपनी अर्थव्यवस्था के आकार या मानव और पूंजीगत - दोनों संसाधनों का बेहतर प्रयोग करके, उपर्युक्त प्रयासों से हम मगर और बाघ की प्रवृत्ति संभवतः हासिल कर सकते हैं। इसके लिए मेरे विचार से हमें निम्नलिखित छः उपाय करने पड़ेंगे;

1. मानव पूंजी में निवेश करके जनसांख्यिकीय लाभों को सुरक्षित रखना

भारत के जनसंख्यिकीय लाभों के कारण हमारे देश को ऐसा महान अवसर उपलब्ध है जिससे वह अपनी वृद्धि की गति को तेज कर सके तथा अपनी प्रति व्यक्ति आय को विकसित दुनिया के देशों के बराबर करने का प्रयास कर सके। भारत की जन्म दर 1951 के प्रति 1000 के पीछे 45.6 से घटकर इस समय लगभग 21 हो गयी है। लेकिन इसका मुख्य कारण अभी भी धीरे-धीरे कम होती शिशु मृत्यु दर है जो प्रति 1000 के पीछे लगभग 46 है। मृत्यु दर 1951 के प्रति 1000 के पीछे 37.2 से बहुत अधिक घटकर इस समय लगभग 7 हो गयी है। लेकिन इसके बावजूद अभी भी हमारी जनसंख्या का अधिकांश भाग वृद्ध नहीं है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के अधिकांश देशों में जनसंख्या की मध्यम आयु 40 वर्ष से अधिक है। लेकिन हमारे देश में यह लगभग 27 वर्ष है। इससे भारत की श्रमशक्ति का समूह पर्याप्त बढ़ेगा और मध्यम आयु में वृद्धि होने के बावजूद हमारे देश की जनसंख्या की मध्यम आयु वर्ष 2026 तक 20-34 की आयु पर अपेक्षाकृत जवान बनी रहेगी। भारत का आयु-निर्भरता अनुपात (कामधंधा कर सकने वाले व्यक्तियों की तुलना में ऐसे निर्भर व्यक्तियों का अनुपात जो 15 वर्ष से कम तथा 64 वर्ष से अधिक के हैं) इस समय लगभग 54 है। यह जापान और फ्रांस की तुलना में पहले से ही कम है।

अधिकांश विकसित देशों में आगामी दो-तीन दशकों में जनसंख्या तेजी से वृद्धावस्था में पदार्पण करेगी जिससे, निर्भरता अनुपात में वृद्धि के कारण, उनकी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था पर भारी दबाव पड़ेगा। इन देशों की समग्र मध्यम आयु वर्ष 1950 के 29.0 से बढ़कर वर्ष 2000 मे 37.3 हो गयी है तथा अनुमान है कि वर्ष 2050 तक बढ़कर यह 45.5 हो जायेगी।

चीन, ब्राज़ील और थाइलैंड जैसे कई विकासशील देश भी, जनसांख्यिकी संक्रांति की अवस्था से गुज़रने के बाद जनसंख्या के वृद्ध होने की समस्या झेल रहे हैं। पिछले 60 वर्ष से अधिक समय से चीन, ऐतिहासिक गति से जनसांख्यिकीय परिवर्तनों से जूझ रहा

है जिसका उसकी जनसंख्या के ढाँचे पर गहरा प्रभाव पड़ा है। ''ग्रेट लीप फॉरवर्ड'' की अवधि के बाद 1960 के दशक के मध्य में आरंभ हुआ ''बेबी बूम" अकाल झेल चुका है और साथ ही मृत्यु दर में तेज़ी से वृद्धि तथा जन्मदर में गिरावट आयी है। चीन का समाज इस समय ''संक्रांति के बाद का समाज'' है, जहाँ जीवन की संभावित अवधि नई ऊँचाईयाँ छू चुकी है, जननक्षमता इस सीमा तक नीचे गिर चुकी है कि वह पहले के स्तर पर नहीं पहुँच सकती, तथा आगामी कुछ दशको में वहाँ की जनसंख्या तेज़ी से वृद्धावस्था प्राप्त कर लेगी। चीन की जनसंख्या वर्ष 2025 तक लगभग 1.4 बिलियन की अधिकतम स्थिति पर पहुँचने के बाद कम होना शुरू हो जायेगी। उस समय तक उसकी जनसंख्या की मध्यम आयु 50 वर्ष तक पहुँच जाने की संभावना है। उस समय तक भारत की जनसंख्या चीन की जनसंख्या से अधिक हो जायेगी। हमारी जनसंख्या वर्ष 2060 तक 1.7 बिलियन के अधिकतम स्तर तक पहुँच जाने की संभावना है।

यह स्पष्ट है कि भारत उभरते बाज़ार की अर्थव्यवस्था वाले अन्य देशों की तुलना में जनसांख्यिकीय दृष्टि से लाभकर स्थिति में है। लेकिन यह जनसांख्यिकीय लाभ वरदान होगा या अभिशाप - इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इसका लाभ किस प्रकार उठाते हैं क्योंकि इन अच्छाइयों का लाभ लेने का समय सीमित होता है। इस शताब्दी के अंत तक भारत जनसांख्यिकीय लाभ की स्थिति में नहीं, बल्कि जनसांख्यिकीय घाटे की स्थिति का सामना करता रहेगा क्योंकि उस समय तक भारत की जनसंख्या में वृद्ध लोगों की संख्या बहुत अधिक होगी तथा विकसित देशों की जनसंख्या बहुत ही नवयुवक होगी। इसलिए जब तक हम जन सांख्यिकीय लाभ की स्थिति में हैं, तब तक उसका लाभ लेने के लिए हमें क्या करने की जरूरत है?

सबसे पहली बात यह है कि हमें ऐसे संसाधनों में निवेश करना चाहिए जो हमें लाभ दे सकते हों। भारत, मानव पूंजी में जितना निवेश करना चाहिए, उससे बहुत कम निवेश करता है। शिक्षा में केंद्र और राज्य सरकारों का संयुक्त खर्च सकल घरेलू उत्पाद का केवल लगभग 3.3 प्रतिशत है तथा स्वास्थ्य पर सकल घरेलू उत्पाद का 1.3 प्रतिशत खर्च अलग से किया जाता है। इसके विपरीत, यूरोपीय संघ के देश शिक्षा पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 5.5 प्रतिशत भाग तथा स्वास्थ्य पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 7.5 प्रतिशत खर्च अपने सामान्य सरकारी खाते से करते हैं, अर्थात् अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग तीन गुना अधिक धन खर्च करते हैं। केवल स्वास्थ्य पर कनाडा का सरकारी खर्च उसके सकल घरेलू उत्पाद के 11 प्रतिशत से अधिक और शिक्षा पर लगभग 5 प्रतिशत है। भारत को आगामी पाँच वर्षों में शिक्षा और स्वास्थ्य पर सरकारी खर्च पर्याप्त बढ़ाने की जरूरत है। तथापि केवल खर्च बढ़ाने से ही उच्च गुणवत्ता वाली मानव पूंजी की गारंटी नहीं हो सकती। हमें इस खर्च की गुणवत्ता पर भी अधिक ध्यान देना होगा और यह सोचना होगा कि क्या हम कम खर्च करके भी बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

हमें अपनी श्रमशक्ति को उचित कौशल प्रदान करने के लिए भी अलग से कदम उठाने की जरूरत है। हमारे उद्योग जगत के लिए, निचले स्तर पर और ऊपर के स्तर पर भी, प्रशिक्षित श्रमशक्ति की कमी है। हमारी श्रमशक्ति के केवल आकार को ध्यान में रखते हुए यह समझा जाता है कि भारत शेष विश्व को कुशल श्रमिक आपूर्ति का स्रोत है। प्रायः लोग यह नहीं समझते कि हमारी ग्रामीण जनसंख्या का 80 प्रतिशत से अधिक भाग और शहरी जनसंख्या का आधे से अधिक भाग अकुशल है। श्रमिक बाज़ार में महिलाओं की सहभागिता की दर बहुत ही कम है। हमारी सबसे बड़ी समस्या तकनीकी शिक्षा पर ध्यान देने के मामले में हमारी कमी है जिसकी सहायता से अकुशल श्रमिकों का एक बड़ा तबका उपयोगी बनाया जा सकता था, बशर्ते उसे प्राथमिक स्तर की शिक्षा देने की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाता। 15 से 29 वर्ष की उम्र वाली काम ढूँढने वाली जनसंख्या का 11 प्रतिशत से कम भाग ही भारत में कोई व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर पाता है, और जो लोग व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, उनमें से प्रत्येक तीन व्यक्तियों में से केवल एक व्यक्ति ही किसी विशिष्ट शिक्षा संस्थान से ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त कर पाता है। इसके अलावा, मूल्ययोजित क्षेत्र में भी, जहाँ हमारी कुशल श्रमशक्ति का सबसे बड़ा भाग नियोजित है, अर्थात् सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, वास्तविक पारिश्रमिक इस गति से बढ़ रहा है कि उससे हमारी स्पर्धा की स्थिति पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है।

इस श्रमशक्ति में जिस अतिरिक्त श्रमिक वर्ग की वृद्धि होती रहती है उसे काम दे पाना सुनिश्चित करना हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। एक मोटे अनुमान के अनुसार आगामी 15 वर्षों में लगभग 10 मिलियन लोगों को प्रतिवर्ष काम देने की जरूरत होगी। यद्यपि समय बीतने के साथ-साथ कृषिक्षेत्र में प्रच्छन्न बेरोज़गारी कम हुई है फिर भी ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि होने तथा खेती के कारपोरेट व्यवस्था के आधार पर, अधिक मशीनीकरण की सहायता से तथा अधिक पूंजी-प्रधान मॉडल के अनुसार करने की जरूरत को ध्यान में रखते हुए कृषि क्षेत्र के लिए यह संभव नहीं होगा कि वह अतिरिक्त लोगों को काम दे सके। पिछले कुछ समय से सेवा क्षेत्र भारत की वृद्धि और रोजगार की कहानी का नायक बना हुआ है, लेकिन यदि विनिर्माण क्षेत्र अधिक प्रतिस्पर्धात्मक नहीं बनता तथा अधिक नौकरियों का सृजन नहीं कर पाता तो वृद्धि की इस गति को बनाये रखना संभव

नहीं होगा। रोज़गार का सृजन करने और हमारी श्रमशक्ति को कुशल बनाने के मामले में यह एक बड़ी चुनौती है।

2. उत्पादकता और दक्षता में सुधार लाना -

उत्पादकता वृद्धि का महत्त्वपूर्ण चालक है। उत्पादकता दक्षता पर निर्भर करती है जिसकी सहायता से दुर्लभ संसाधनों का आबंटन किया जाता है - चाहे यह आपका समय हो, काम का प्रयास हो, प्राकृतिक संसाधन हों, पूंजी हो, या कोई अन्य निविष्टि। अधिकांश देशों की बहुत अधिक वृद्धि का कारण उत्पादकता में वृद्धि होना है, विशेषतः कुल कारक उत्पादकता वृद्धि / कारकों के समूहन (जैसे श्रमिकों या पूंजी में वृद्धि) के कारण तो वृद्धि में अपेक्षाकृत कम सुधार ही हो पाता है। इस अनुभव को दृष्टिगत रखते हुए यदि भारत को बाघ बनाना हो तो इसे कुल कारक उत्पादकता वृद्धि में सुधार लाने के लिए प्रौद्योगिकी की उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना होगा। पूंजी के सुदृढ़ीकरण से भी मदद मिल सकती है लेकिन सबसे प्रमुख आवश्यकता समग्र उत्पादकता में सुधार लाना ही होगा।

भारत में 1990 के दशक के प्रारंभिक भाग में शुरू किए गए सुधारों के बाद सेवा क्षेत्र में प्रति श्रमिक उत्पादन में बहुत अच्छी दर से वृद्धि हुई है। इस अवधि में इस क्षेत्र के मामले में कुल कारक उत्पादकता वृद्धि भी बहुत अच्छी रही है, यद्यपि मैं इसके सही-सही आँकड़े उद्धृत करने से बचना चाहूँगा क्योंकि वृद्धि दर से संबंधित अनुसंधानों में प्रायः अलग-अलग आँकड़े दिये गये हैं। 1980 के दशक से विनिर्माण क्षेत्र के मामले में भी कुल कारक उत्पादकता वृद्धि में भी सुधार आया है। इस प्रकार उन्नति तो हो रही है फिर भी इस तकनीकी परिवर्तन की दर पूर्वी एशिया की अर्थव्यवस्थाओं की उस अवधि की दर से अपेक्षाकृत कम है जिस अवधि में उन्होंने पूर्वी एशिया के टाइगर की संज्ञा प्राप्त की।

मैं ज्यादा व्यापक नीति संबंधी उपायों से जुड़े उपायों पर अधिक ध्यान केंद्रित करूँगा जो भारत को बाघ के रूप में रूपांतरित करने की प्रक्रिया के दौरान आवश्यक होंगे। इस परिप्रेक्ष्य में मैं चार सुझाव दूँगा :-

पहला, कृषि की उत्पादकता में सुधार लाना जरूरी है क्योंकि खेती से संबंधित क्षेत्र में वृद्धि करना स्पष्टतः व्यावहारिक नहीं है और इसलिए अनाज़ों, दालों, फलों और सब्जियों की बढ़ती मांग को उपज बढ़ाकर ही पूरा किया जा सकता है। खेती की सही तकनीक अपनाकर, कृषि की बेहतर प्रजातियाँ अपनाकर और इष्टतम जल-प्रबंधन का सहारा लेकर कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता में पर्याप्त सुधार लाना संभव होगा। बायोटेक्नोलॉजी, जीनॉम टूल्स, सस्ती और पर्यावरण के अनुकूल समन्वित कीट-प्रबंधन प्रौद्योगिकी, बीज़ आपूर्ति के चेन और प्रणालियाँ, और अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अलग-अलग विकसित की गयी उप-प्रजातियाँ और संकर प्रजातियाँ अपनाने से इस क्षेत्र में मदद मिलेगी।

दूसरा, हमारे लघु और मझोले उद्यम क्षेत्र के सामने जो कठिनाइयाँ हैं उन्हें दूर करने पर हमें अधिक ध्यान देने की जरूरत है। लघु और मझोला उद्यम क्षेत्र हमारे औद्योगिक उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग उत्पादित करता है तथा हमारे कुल व्यापारिक निर्यात में एक तिहाई भाग का योगदान करता है। वर्तमान मंदी के समय में, प्राप्त राशियों में वृद्धि, अपर्याप्त ऋण तथा ऋण की ऊँची लागत के कारण लघु और मझोले उद्यम क्षेत्र के लिए कारोबारी परिवेश प्रतिकूल साबित हो रहा है। लघु और मझोले उद्यम क्षेत्र को, आधिक उत्पादन के कारण उत्पादन की लागत के सस्ते होने का वह अवसर उपलब्ध नहीं है जो बड़े कारपोरेट्स को उपलब्ध होता है। इसे सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ भी पूरी तरह नहीं मिल पाता है क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी की लागत इसके लिए बहुत अधिक होगी और पुरानी मशीनों को बदलने का खर्च भी अधिक आयेगा। यद्यपि बड़ी फर्मों के साथ इस क्षेत्र क्षेत्र का बहुत अच्छा संपर्क है फिर भी लघु और मझोले उद्यम क्षेत्र को प्रौद्योगिकी के अंतरण की उचित संस्थागत व्यवस्था दोषपूर्ण है। यदि लघु और मझोले उद्यम क्षेत्र को आपूर्ति चेन साथ भलीभांति एकाकार होना है तो हमें यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि बड़ी फर्मों के साथ वित्त और प्रौद्योगिकी का जुड़ाव हमेशा अच्छी तरह काम करता रहे।

तीसरा, जैसा कि मैंने कुछ समय पहले बताया, भारत की वृद्धि दर को अगली मदद विनिर्माण क्षेत्र से मिलेगी। हमने अवसरों की लगभग एक शताब्दी गँवा दी है। भारत अपने यहाँ उत्पादित किसी एक भी बड़े ग्लोबल ब्रांड का दावा नहीं कर सकता जबकि दक्षिण कोरिया, ताइवान जैसे अपेक्षाकृत छोटे देश कई-कई ग्लोबल ब्रांड तैयार कर चुके हैं। विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि में सहायता प्रदान करने के लिए हमारी बहुत बड़ी मानव पूंजी का प्रभावी ढंग से उपयोग नहीं किया जा सका है। लेकिन इसके लिए मैं अपने देश में अनुसंधान और विकास की उपयुक्त संस्कृति के अभाव को दोष दूँगा। विश्व स्तर पर अनुसंधान और विकास की गहनता की दृष्टि से भारत लगभग सबसे पिछले पायदान पर है। भारत अनुसंधान और विकास पर अपने सकल घरेलू उत्पाद के एक प्रतिशत से भी कम खर्च करता है। इज़रारल, फिनलैंड, स्वीडन, कोरिया, जापान, अमेरिका और जर्मनी जैसे देशो में अनुसंधान और विकास गतिविधियों पर भारत की तुलना में तीन गुने से भी ज्यादा खर्च किया जाता है।

चौथा, उत्पादकता से जुड़ा एक प्रमुख मुद्दा है काम के प्रति हमारा नज़रिया। यह विचित्र बात है कि भारत प्रारंभिक वैदिक

काल में श्रम की मर्यादा का प्रतीक था, लेकिन बाद में इसने एक ऐसी संस्कृति को हृदयंगम किया जिसमें श्रमिकों को सम्मान नहीं दिया जाता। हमने स्वामी विवेकानंद के उस योगदान को भुला दिया है जिसके अंतर्गत काम को पूजा माना जाता है। किसी भी तरह का काम, चाहे वह शारीरिक हो या बौद्धिक, किसी दूसरे काम से छोटा नहीं होता। राष्ट्र के रूप में हम श्रम की मर्यादा के प्रति सम्मान प्रकट करने की भावना की निरंतर उपेक्षा करते जा रहे हैं। चूंकि भारत में शारीरिक श्रम से संबंधित काम को उतना ही सम्मान नहीं प्राप्त है जितना किसी बैद्धिक काम को, इसलिए काम करने के प्रति उत्साह समाप्त हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप घरेलू सकल उत्पाद में कमी आ जाती है और कल्याणकारी काम कम संपादित हो पाते हैं। लोग शारीरिक श्रम का काम करने के बजाय अपना समय व्यर्थ ही गंवाते हैं। इस बात को कैसे उचित ठहराया जाए कि बिहार, ओडिशा, उत्तर प्रदेश इत्यादि जैसे गरीब राज्यों के मज़दूर पंजाब और हरियाणा में जाकर कृषि फार्मों पर कड़ा परिश्रम करते हैं लेकिन वे वही काम अपने क्षेत्र में नहीं करते जहाँ की जमीन बहुत ज्यादा उपजाऊ है और वहाँ पर उतना ही श्रम करना अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक व लाभकर होगा। इस संबंध में हमें पश्चिमी देशों के समाज का अनुकरण करना होगा जहाँ अलग-अलग प्रकार के कामों को एक समान नज़रिये से देखा जाता है। जब प्रेसिडेंट क्लीवलैंड एक शताब्दी से अधिक समय पहले वर्ष 1894 में श्रम की मर्यादा स्वीकार कर सकते थे तब अब समय आ गया है कि हम उन आकस्मिक श्रमिकों को सम्मान दें जो हमारे आसपास काम करते हैं - चाहे वह घर में काम करने वाली नौकरानी हो, हमारे ड्राइवर हों या हमारे कारखानों में काम करने वाले कामगार - हमें इन सबको उचित सम्मान देना होगा। यद्यपि ऐसा करेंगे तो और ज्यादा महिलाएं और पुरुष काम करने वालों में शामिल होंगे, बेरोजगारी में कमी आयेगी और भारतीय उद्योग विश्व स्तर पर अधिक प्रतिस्पर्धी बनेगा।

3. इन्फ्रास्ट्रक्चर में निवेश को बढ़ावा देना और प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर उपयोग करना -

भारत में इन्फ्रास्ट्रक्चर की कमी के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है जो उचित ही है। भारत में पर्याप्त सड़के नहीं हैं और न ही पर्याप्त बिज़ली। जब मैं बड़ा हो रहा था, तब मुझे पढ़ाया जाता था कि भारत गरीबों का देश है लेकिन वह संसाधन-संपन्न है। आज हमने गरीबी कम करने के मामले में एक लंबी छलांग लगा ली है और हमारे पास अभी भी प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। फिर भी हमने उनका इष्टतम उपयोग करना नहीं सीखा है। उदाहरण के लिए यदि हम कोयले की बात करें तो वह भारत की 55 प्रतिशत बिजली की जरूरतों को पूरा कर सकता है। हमारे पास हार्ड कोल का लगभग 246 बिलियन टन का भंडार है जिसमें से 92 बिलियन टन की जांच-पड़ताल भी पूरी कर ली गई है। फिर भी हम केवल 530 मिलियन टन कोयले का उत्पादन कर पाये हैं तथा इस प्रकार हम 150 मिलियन टन से अधिक की कमी की स्थिति झेल रहे हैं। कोयले की कमी के कारण हमारा विद्युत उत्पादन बाधित हो रहा है और यद्यपि 11वीं पंचवार्षिक योजना के दौरान 55 गीगावॉट की नई क्षमता सृजित की गयी, तथापि कोयले की कमी के कारण इसके एक बड़े भाग का उपयोग नहीं किया जा रहा है। निजी क्षेत्र को जो कोयले के नये ब्लाक आबंटित किये गये थे उनमें अधिकांश को वह विकसित नहीं कर पाया है। इस क्षेत्र में हमारी योजना अपर्याप्त रही है और उसका कार्यान्वियन बहुत खराब रहा है। हमारी योजना है कि 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इससे भी अधिक ताप विद्युत क्षमता सृजित की जाए, लेकिन कोयले की आपूर्ति के बारे में हम आश्वस्त नहीं हैं। इसके अलावा बैंकों ने विद्युत क्षेत्र को उत्पादन और वितरण - दोनों कामों के लिए बहुत ज्यादा ऋण उपलब्ध कराया है। वितरण के मामले में राज्यों की वितरण कंपनियां बहुत बड़े घाटे झेल रही हैं और बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों के अशोध्य हो जाने की संभावना है। निष्कर्षस्वरूप, कारोबारी विश्वास समाप्त हो गया है और इसके कारण निवेश में आया उछाल समय से पहले ही बंद होने के कगार पर पहुंच गया है।

इस संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण है - इन्फ्रास्ट्रक्चर क्षेत्र में निवेश के प्रति लोगों का विश्वास पैदा करना और इस क्षेत्र को ऋण उपलब्ध कराना। सरकार ने अभी हाल में इसे सुकर बनाने के लिए कई कदम उठाये हैं। नये फ्यूअल सप्लाई एग्रीमेन्ट की विस्तृत रूपरेखा को अंतिम रूप दिया जा चुका है, यद्यपि आयातित और देशी कोयले की प्राइस-पूलिंग जैसे कुछ जटिल मुद्दों का समाधान अभी भी नहीं हो पाया है। इन बकाया मुद्दों को जल्दी हल करने की जरूरत है। इसी प्रकार वितरण कंपनियों के मामले में एक ऋण पुनर्गठन पैकेज को अंतिम रूप दे दिया गया है। निजी क्षेत्र को इन उपायों का लाभ उठाना चाहिए और इस महत्त्वपूर्ण घड़ी में स्वदेशी नवोन्मेष की भावना को फिर से जागृत करना चाहिए। बैंकों को भी, वृद्धि को समर्थन प्रदान करने के लिए, अपनी कारोबारी जरूरतों और जोखिम आकलन के बीच संतुलन बनाये रखते हुए अपना कोर बैंकिंग कारोबार संपादित करना चाहिए।

हमें अपने प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर उपयोग भी करने की जरूरत है। एक सरल उदाहरण पानी का लीजिए। हमारे देश में निरंतर बहनेवाली नदियों के नेटवर्क के कारण और पर्याप्त वर्षा के कारण हमारे पास जल संसाधन का बहुत बड़ा भंडार उपलब्ध

है। हम एक साल में जितने पानी का इस्तेमाल करते हैं उससे चार गुना ज्यादा पानी हमें वर्षा से प्राप्त होता है, फिर भी भारत में जल एक दुर्लभ संसाधन है। हमने अपने साधनों का पर्याप्त उपयोग नहीं किया है और जल के भंडारण और वितरण की योजना दक्षतापूर्वक तैयार नहीं की है। भारत की प्रति व्यक्ति भंडारण क्षमता अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। उदाहरण के लिए भारत के मामले में नदियों के औसत प्रवाह के अनुपात के रूप में पानी की जितनी मात्रा का भंडारण किया जा सकता है वह औसत प्रवाह के केवल 50 दिनों के बराबर है, और उसमें भी अलग-अलग नदियों के मामले में यह अलग-अलग है। कृष्णा के मामले में यह 220 दिन है जबकि ब्रह्मपुत्र / बराक बेसिन में यह केवल दो दिनों के बराबर है। ये आंकड़े कोलोरेडो रीवर बेसिन और ऑस्ट्रेलिया के मरे-डार्लिंग बेसिन के मामले में 900 दिन तथा दक्षिण अफ्रीका की ऑरेंज रीवर बेसिन के मामले में 350 दिन है। बेहतर जल प्रबंधन से भारत में कृषि की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं।

भारत को अपने खनन, स्प्रेक्ट्रम और वायु संसाधनों का भी बेहतर उपयोग करने की जरूरत है। लोग स्वच्छ वायु के महत्त्व को प्रायः नहीं समझ पाते। हमें विकास संबंधी जरूरतों और पर्यावरण संबंधी वचनबद्धताओं के बीच सही संतुलन स्थापित करने की जरूरत है ताकि दीर्घावधि की निरंतरता सुनिश्चित की जा सके। भारत विश्व के सर्वाधिक प्रदूषण फैलानेवाले देशों में नहीं है। यह समझने की जरूरत है कि जापान में प्रति वर्ग किलोमीटर कार्बन डाई-ऑक्साइड का औसत प्रदूषण भारत से 7.5 गुना ज्यादा है। इसी प्रकार भारत का प्रति व्यक्ति कार्बन डाई ऑक्साईड उत्सर्जन विश्व स्तर पर सबसे कम प्रदूषण वाले देशों में है। इसके बावजूद हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वायु प्रदूषण का स्वास्थ्य पर गंभीर दुष्प्रभाव पड़ता है और भारत का स्थान चीन, अमेरिका और रूस के बाद कार्बनडाइड ऑक्साइड से सबसे अधिक प्रदूषण फैलाने वाले देशों की सूची में चौथा है। इस प्रकार यदि हम तेज वृद्धि के साथ-साथ, काफी लंबे समय तक बनाये रखने योग्य अच्छी गुणवत्ता वाली वृद्धि भी सुनिश्चित करना चाहते हैं तो हमें पर्यावरण के अनुकूल तरीकों से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने के प्रयास जारी रखने होंगे।

4. प्रत्येक स्तर पर अभिशासन में सुधार लाना

विश्व बैंक के वैश्विक अभिशासन निर्देशक 2006-11 में अभिशासन के प्रमुख मानदंडों पर भारत को औसत से नीचे रखा गया है। राजनीतिक स्थिरता और हिंसा के अभाव के संबंध में भारत को 15 प्रतिशत अंक मिले हैं, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण तथा विनियामक गुणवत्ता के संबंध में 40 प्रतिशत, विधि के शासन तथा सरकार की प्रभावशालिता के संबंध में 55 प्रतिशत और भ्रष्टाचार तथा जिम्मेदारी तय करने के संबंध में 60 प्रतिशत अंक मिले हैं। स्पष्ट ही है कि इन मानदंडों पर हमारे देश में सुधार की बहुत अधिक गुंजाइश है। हमारे समग्र अभिशासन तथा कारपोरेट अभिशासन - दोनों में सुधार की जरूरत है। वस्तुतः हमें प्रत्येक स्तर पर बेहतर अभिशासन की जरूरत है - अस्पताल और स्कूल और विद्यालयों से लेकर राजव्यवस्था, फार्मों, गैर-लाभ संस्थाओं, खेलकूद, बैंकिंग और वित्त, विनियमन, भूमि संबंधी दस्तावेजों और यहां तक कि हमारे दैनिक जीवन में भी।

हमारे अभिशासन के दोष, किसी न किसी रूप में कारोबार करने की सुविधा के मामले में हमारी रैंकिंग में अभिव्यक्त होते हैं। इस वर्ष जारी की गयी आईएफसी-विश्व बैंक रिपोर्ट 2013 के अनुसार 185 अर्थव्यवस्थाओं में ''कारोबार करने में आसानी'' की माप करने के लिए प्रयुक्त सूचकांक के आधार पर भारत का स्थान 132वां हैं। सिंगापुर और हांगकांग को प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त हुए हैं। इससे जुड़े छोटे-छोटे खंडों के मामले में, ऋण प्राप्त करने में सुविधा के मानदंडों के आधार पर भारत का स्थान 23वां और निवेशकों को सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से 39वां है। तथापि, कारोबार आरंभ करने की दृष्टि से इसका स्थान 173वां, निर्माण के लिए परमिट पर कारवाई करने की दृष्टि से 182वां और संविदाओं को लागू करने के मामले में 184वां है।

उसी रिपोर्ट के अनुसार भारत में कोई कारोबार आरंभ करने के लिए औसतन 173 दिन और बिजली प्राप्त करने में 67 दिन लगते हैं। सिंगापुर में कोई कारोबार आरंभ करने के लिए मात्र 3 दिन, निर्माण के लिए परमिट प्राप्त करने के लिए 26 दिन और बिजली प्राप्त करने में 36 दिन लगते हैं। दूसरे सभी ईस्ट एशियन टाइगर्स का रिकार्ड भी इन मानदंडों के मामले में भारत से बहुत अच्छा है।

यदि हम बाघ बनना चाहते हैं तो हमें कारोबार के मामले में, तथा देशी और विदेशी फर्मों, व्यापारियों और पर्यटकों के लिए अधिक अनुकूल बनना होगा। वास्तव में हमारा रिकार्ड लोकतांत्रिक व्यवस्था, क्रियाशील सरकार, सक्रिय मीडिया और स्वतंत्र न्यायपालिका के मामलों में बहुत ही स्पृहणीय रहा है। तथापि, भारत में किसी भी मामले में कारवाई करने से संबंधित जोखिमों को और कम करने की आवश्यकता है। हमें उस स्तर पर पहुँचना है जहां ईस्ट एशियन टाइगर्स पहले से ही हैं। यही कारण है कि हमने रिजर्व बैंक की पिछली वार्षिक रिपोर्ट में सिंगापुर मॉडल अपनाने की वकालत की है। सीमित तौर पर, राष्ट्रीय निवेश बोर्ड के रूप में इस मामले में प्रयास किये जा रहे हैं। परियोजनाओं के

मामले में होने वाले विलंब को कम करने में सुव्यवस्थित तरीके से काम करने वाला राष्ट्रीय निवेश बोर्ड बहुत बड़ी भूमिका निभा सकता है। तथापि, हमारे संघीय ढांचे में राष्ट्रीय निवेश बोर्ड के सामने फिर भी कुछ कठिनाईयाँ आयेंगी। इसका अधिकार-क्षेत्र उन परियोजनाओं को मंजूरी देने के मामले में नहीं होगा जो राज्यों के स्तर पर जरूरी होते हैं। सिंगापुर मॉडल इससे भी एक कदम आगे है। इसमें यह अपेक्षित होता है कि किसी परियोजना को स्वीकृत या अस्वीकृत करने के लिए सभी संबंधित एजेसियां एक साथ बैठकर काम करें तथा ऐसा न होने पर यह मान लिया जाता है कि स्वीकृति प्रदान कर दी गयी है। हमें कारोबार आरंभ करने, उद्यमिता को उन्मुक्त अवसर देने और उद्यम पूंजी को बढ़ावा देने के लिए भारत में अनुकूल परिवेश तैयार करना होगा।

हमें वित्तीय और गैर-वित्तीय फर्मों - दोनों के मामले में अपने कारपोरेट अभिशासन का रिकार्ड सुधारना होगा। किसी क्षेत्र में काम आरंभ करने से जुड़े अवरोधों को समाप्त करना होगा तथा अधिक प्रतिस्पर्धी परिवेश निर्मित करना होगा। तथापि, हमें एक ऐसा फ्रेमवर्क विकसित करना होगा और न्यूनतम दूरी बनाए रखकर काम करने की संस्कृति का पालन करना होगा जिसके अंतर्गत नजदीक से जुड़े क्षेत्र को ऋण देने और उसके साथ कारोबारी संबंध रखने की अनुमति नहीं होगी जिससे 'लूट' को बढ़ावा नहीं मिलेगा, जैसा कि ऐकरलोफ (वर्ष 2001 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित) और रोमर ने वर्णित किया है। उन्होंने यह तर्क दिया कि यदि फर्मों को सफलता के लिए सट्टेबाजी करने के लिए काम करने के बजाय समाज की कीमत पर लाभ कमाने के लिए सट्टेबाजी करने के लिए इनसेंटिव उपलब्ध कराया जाए तो एक आर्थिक रहस्य जीवंत होकर प्रकट होगा। यदि लेखाकरण की गुणवत्ता खराब हो, विनियमन ढीला हो, या गलत कामों के लिए बहुत कम दंड की व्यवस्था हो तो मालिकों को अपनी फर्मों की मालियत से ज्यादा लाभ कमाने का इनसेंटिव मिलेगा और उसके बाद वे अपने ऋणों को चुकता करने में चूक करने लगेंगे तथा लाभ के लिए दिवालिया बन जायेंगे। विनियामक प्रावधानों के अनुसार अच्छे कारपोरेट अभिशासन के नाममात्र के अनुपालन और ईमानदारी से वास्तविक अनुपालन करने के बीच अभी भी एक बड़ा अंतराल मौजूद है। हमें इस अंतराल को कम करने की जरूरत है।

5. जीवन के सभी क्षेत्रों में जिम्मेदारी की व्यवस्था लागू करना

अपने इस संबोधन में मैं जिन पांच अन्य उपायों का उल्लेख करूँगा, जिनमें अच्छे अभिशासन का वास्तविक अनुपालन शामिल होगा, वे तब तक हासिल नहीं किये जा सकते जब तक हम जिम्मेदारी की व्यवस्था लागू नहीं करेंगे। जैसे हमें बेहतर अभिशासन की हर स्तर पर जरूरत है, वैसे ही हमें जीवन के सभी क्षेत्रों में जिम्मेदारी की व्यवस्था भी लागू करने की जरूरत है। जिम्मेदारी संबंधी हमारा ढांचा, विशेषतः सरकारी क्षेत्र में, कमजोर है। प्रशासन में नौकरशाह जितना जोखिम उठाते हैं, उसकी तुलना में उन्हें बहुत कम प्रोत्साहन दिया जाता है, उन्हें अपने लक्ष्य सफलतापूर्वक पूरे करने के लिए कभी-कभार ही पुरस्कृत किया जाता है तथा खराब काम के लिए, ज्यादा-से-ज्यादा, केवल उनका स्थानांतरण किया जाता है। सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के प्रबंधनों के सामने, नौकरशाहों द्वारा की जानेवाली दखलंदाजी के अलावा, इसी तरह की कई समस्याएं आती हैं जिनके चलते निर्णय लेने में देर होती है तथा वे उन नीतियों का कार्यान्वयन नहीं कर पाते जो सरकारी क्षेत्र की किसी यूनिट के सर्वोत्तम हित में होती हैं। ऐसे परिवेश में जिम्मेदारी की व्यवस्था लागू करना मुश्किल है।

कारपोरेट जिम्मेदारी के संबंध में प्रबंधन, या वे लोग जो स्वामित्व और नियंत्रण का अलग अर्थ लगाते हैं, और वास्तविक मालिक के रूप में शेयरधारकों के बीच प्रिंसिपल-एजेंट का संबंध बहुत कमजोर है। ऐसे कमजोर परिवेश में आस्तियों के छीन लेने और दीवालियेपन की घटनाएं हम सभी लोग देख चुके हैं। यह बात खास तौर पर उन मामलों में सच है जहां किसी कारोबारी समूह के भीतर कंपनियों का एक जटिल जाल मौजूद होता है। ऐसे ढांचे को सरल बनाने की नितांत आवश्यकता है जो करों की चोरी करने के लिए, विनियामक अंतरपणन के कारोबार में तल्लीन रहने और व्यक्तिगत लाभ के लिए फर्म की आस्तियों का प्रयोग करने के लिए तैयार किये गये होते हैं। हाल के दिनों में ऐसे उदाहरण सामने आये हैं जिनमें कारपोरेट ऋण के पुनर्गठन की इच्छा जतायी गयी है लेकिन उन कारपोरेट्स पर जिनका नियंत्रण है उनकी स्वामित्व संबंधी वचनबद्धताओं को कमजोर ही रहने दिया गया है। हमें ऐसी कारोबारी संस्थाओं को अपनी स्वयं की ज्यादा पूंजी लगाने के लिए उनपर दबाव डालकर ऐसे मामलों में जिम्मेदारी की व्यवस्था लागू करनी चाहिए। कारोबार करनेवालों द्वारा आरंभ में निधियों का दुरुपयोग कर लिये जाने के बाद, जनता से नई पूंजी की उगाही करने के लिए कभी-कभी नई फर्में शुरू किये जाने, फर्मों का नाम बदले जाने या विलय और अभिग्रहण किये जाने के गंभीर मामले देखे गये हैं। ऐसी घटनाओं को रोकन के लिए सीमित उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर आधारित आधुनिक फ़र्म बनाये जाने की संकल्पना के संबंध में सावधानी बरतने की जरूरत है।

हमारी राजनीतिक प्रणाली में हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं के माध्यम से जिम्मेदारी की पर्याप्त व्यवस्था सुनिश्चित की जाती है। फिर भी इस बात पर बहस चल रही है कि क्या चुने

हुए प्रतिनिधियों को वापस बुला लेने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। राजव्यवस्था के कई खंडों में विभाजित होने और अल्पमत तथा मिली-जुली पर्टियों की सरकारें होने के कारण कभी-कभी स्थिति और खराब हो जाती है। नगरपालिका स्तर पर भी जिम्मेदारी की भावना कम है। इस कारण, सृजित किए गए इन्फ्रास्ट्रक्चर के रखरखाव पर दुष्प्रभाव पड़ता है। सड़कें कभी-कभार ही एक साल से अधिक समय तक टिक पाती हैं। ड्रेनेज प्रणाली भी जाम हो जाती है।

इसलिए ऐसे परिवेश में चार काम करने आवश्यक हैं। पहला, सरकारी या गैर-सरकारी - सभी संस्थाओं में भागीदारों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। इसके अलावा, भागीदारों की संख्या बढ़ाए जाने की प्रक्रिया में व्यापक वर्गों के लोगों को शामिल किए जाने के सिद्धांत का ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि किसी खास वर्ग के विनियामकों द्वारा निधियों के दुरुपयोग को रोका जा सके। दूसरा, जिन मामलों में समूह-आधारित नज़रिया अपनाया जाए उनमें भी व्यक्तियों को, न कि समितियों या समूहों को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। संबंधित काम दूसरों को आवंटित कर दिए जाने या कर्मियों की सेवानिवृत्ति के बाद भी संबंधित व्यक्ति की जिम्मेदारी समाप्त नहीं मानी जानी चाहिए। तीसरा, सभी लोगों के लिए वित्तीय जिम्मेदारी अनिवार्यतः लागू की जानी चाहिए। राजकोषीय पारदर्शिता में वृद्धि के लिए, बज़ट तैयार करने की प्रक्रिया और अधिक चुस्त-दुरुस्त बनाई जानी चाहिए ताकि चूक की संभावनाएं कम की जा सकें। उसी प्रकार, फर्मों और गैर-लाभ संस्थाओं के लिए वित्तीय जिम्मेदारी बढ़ाए जाने की जरूरत है। चौथा, जिम्मेदारी का उस स्तर तक अधिकतम कोडीकरण किया जाना चाहिए जिस स्तर तक संभव हो और उपलब्धियों, असफलताओं तथा सुधार के लिए उठाए गए कदमों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना याहिए।

6. वस्तु क्षेत्र और समावेशी वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए अधिक वित्त उपलब्ध कराना

अब मैं भारत को हाथी से बाध बनाने की प्रक्रिया में वित्त की भूमिका के संबंध में बातें करूंगा। मैंने इसे अपने व्याख्यान के अंतिम भाग में इसलिए रखा है क्योंकि वित्त का संबंध मुख्यतः इस क्षेत्र से होना चाहिए। हाल की अवधि में वित्त का महत्त्व बहुत बढ़ गया है तथा अब यह वस्तु क्षेत्र की जरूरतों को पूरा ही नहीं कर रहा है बल्कि वस्तु क्षेत्र के लिए इसका महत्त्व सबसे अधिक हो गया है। "यह क्षेत्र इतना बड़ा है कि यह फेल हो ही नहीं सकता" की धारणा, अपने लेखाओं को अच्छा स्वरूप देने के लिए फर्मों द्वारा 'अन्य आय' पर निर्भरता, बाजार का ठोस आधार पर नहीं बल्कि अफवाहों के आधार पर काम करना, ऐसे उदाहरण हैं जो यह साबित करते हैं कि वित्त का क्षेत्र ज्यादा बड़ी समस्याओं से ग्रसित होता जा रहा है। साथ ही, वस्तु क्षेत्र की गतिविधियों को समर्थन देने के लिए उपलब्ध वित्त अभी की अपर्याप्त है। सूचनाओं की विषमता के कारण, फर्में और कारोबार अभी भी वित्तीय सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। वित्त से जुड़ी कठिनाइयां अर्थव्यवस्था में निवेश और वृद्धि के लिए बाधक बनती हैं। संपार्श्विक प्रतिभूतियों की कमी के कारण गरीबों को प्रारंभिक बैंकिंग सेवाएं भी नहीं मिल पातीं जिसके परिणामस्वरूप न केवल भारी बचत के कुछ अवसर बेकार चले जाते हैं, बल्कि समाज में विषमता और ध्रुवीकरण बढ़ते हैं जिसके चलते बेहतर परिणाम मिलने में बाधा पड़ती है क्योंकि समाज में लाभ हासिल कर लेने वाले लोग लाभों से वंचित रह गए लोगों को किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकते।

वित्त का विनियमन और चुस्ती से किया जाना चाहिए। इसके लिए अधिक विनियमों की जरूरत नहीं है, बल्कि विनियमन कम संख्या में और अधिक नए होने चाहिए जो अधिक प्रभावी हों। साथ ही वित्त से जुड़े लोगों की वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी होनी चाहिए, जिसके बिना समावेशी वृद्धि हासिल नहीं की जा सकती। बैंकिंग का चेहरा मानवीय स्वरूप वाला होना चाहिए क्योंकि घरेलू क्षेत्र ही बैंकिंग गतिविधियों के लिए उचित आधार प्रदान करता है। इसी क्षेत्र के पास इस प्रकार का अतिरिक्त वित्त उपलब्ध होता है जो कारपोरेट और सरकारी क्षेत्रों में लगाया जा सकता है जहां वित्त की कमी होती है। बैंकों द्वारा ऋण प्रदान किए जाने के संबंध में मेरा प्रयास उन नीतियों को बढ़ावा देने का होता है जिनसे जनसंख्या के अतिसंवेदनशील वर्ग को अधिक ऋण उपलब्ध कराया जा सके, अन्यथा यह वर्ग वित्तीय सुविधाओं से वंचित रह जाएगा।

समय बीतने के साथ-साथ रिज़र्व बैंक का प्रयास इसी तरह का रहा है। शाखा लाइसेंसिंग नीति तथा निर्देशित ऋण व्यवस्था ऐसे दो स्तम्भ रहे हैं जिनपर वित्तीय समावेशन के प्रयास लंबे समय से अवलंबित हैं। बैंकों ने बैंक लाइसेंसिंग नीति की (जिसके अंतर्गत शहरी शाखाओं के लिए जारी किए गए प्रत्येक लाइसेंस के पीछे ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ निश्चित अनुपात में शाखाएं खोलना अनिवार्य बना दिया गया है) यह कहकर आलोचना की है कि ऐसी नीति उनके कारोबारी हितों के लिए बाधक बन रही है। तथापि, स्पष्ट अनुसंधानात्मक साक्ष्य यह संकेत करते हैं किभारत में सामाजिक बैंकिंग के क्षेत्र में किया गया यह प्रयोग ग्रामीण जनसंख्या को ऋण की उपलब्धता में सुधार लाने और इसके परिणामस्वरूप गरीबी कम करने में सफल रहा है। प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्र को ऋण प्रदान करने से जुड़ी व्यवस्था के कारण भी अर्थव्यवस्था के उन उत्पादक क्षेत्रों

को अधिक ऋण उपलब्ध कराने के मामले में सुधार हुआ है जिन्हें सूचनाओं की विषमता के कारण, बैंक ऋण बाजार से बाहर रह जाना पड़ता। यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि उपयुक्त आयोजना और प्रौद्योगिकी-चालित दक्ष डेलिवरी चैनलों का प्रयोग करके बैंक लाभकर तरीके से वित्तीय समावेशन का काम करना जारी रख सकते हैं।

हमारे नजरिए को दखलंदाजी नहीं समझा जाना चाहिए। व्यवहार्यतः रिज़र्व बैंक का सबसे बड़ा संतुलित उद्देश्य समाजिक न्याय और दक्षता है ताकि वित्तीय समावेशन को बढ़ावा मिल सके, लेकिन साथ ही बैंकों के वित्तीय स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव भी न पड़े। बिल्कुल हाल के दिनों में जब मैं भी रिजर्व बैंक से जुड़ा हूँ, वित्तीय समावेशन के प्रयासों को हमने कई गुना बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए, विदेशी बैंकों के मामले में प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्र से जुड़े प्रावधानों को ऐसे बैंकों के मामले में 32 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया है जिनकी भारत में 20 या अधिक शाखाएं हैं। हमने उन लोगों के मामले में आधारभूत बैंकिंग को अधिक मानवीय स्वरूप प्रदान किया है जिनके बैंक खाते नहीं थे।

निष्कर्ष

अब मैं कुछ ऐसी बातों की चर्चा करना चाहूँगा जो बाघ बनने के हमारे प्रयासों के दौरान, हमें ईस्ट एशियन टाइगर्स से सीखने की जरूरत है। इन टाइगर कन्ट्रीज में वृद्धि की गति को उदारीकरण, निर्यात की अग्रगण्यता वाली वृद्धि, शिक्षा में भारी निवेश, शिक्षित कामगारों के बड़े तबके, उच्च सरकारी और गैर-सरकारी बचत-दर तथा समष्टि-आर्थिक अनुशासन और अभिशासन से सहायता मिली। हम इनमें से कुछ का अनुसरण कर रहे हैं और कुछ और नीतियों का अनुसरण बाद में करेंगे। तथापि, ये टाइगर्स भी अपनी कुछ गलतियों के कारण अपनी बढ़त बनाए रखने में नाकामयाब हो गए। उनमें से कुछ ने विदेशी निवेश प्राप्त करने के लिए ऊंची ब्याज दरें रखीं, दूसरों ने अपनी मुद्रा को दूसरी मुद्राओं से जोड़कर रखा और उनमें से भी कई ने अतिसंवेदनशील वित्तीय प्रणाली विकसित की। इसलिए बैंकिंग और मुद्रा से जुड़े अप्रत्याशित आघातों के परिणामस्वरूप ईस्ट एशियन क्राइसिस के दौरान उनकी वृद्धि दर धराशायी हो गई। कुछ देशों में (विशेषतः कोरिया में चायबोल्स) कॉरपोरेट्स की विफलता के कारण वित्तीय क्षेत्र की समस्याओं ने और जटिल रूप धारण कर लिया। भारतीय अर्थव्यवस्था को टाइगर के रूप में रूपांतरित करते समय ईस्ट एशियन क्राइसिस के दौरान प्राप्त सबक को ध्यान में रखते हुए हमें बहुत सोच-समझकर नीतियां बनानी पड़ेगी।

धैर्यपूर्वक मेरी बातें सुनने के लिए बहुत धन्यवाद। कारोबारी चक्रों के दौरान मंदियों के दौर आते हैं और चले जाते हैं। हमारी वर्तमान दुरवस्था के दौर में समष्टि-आर्थिक क्षेत्र में स्थिरता आने के साथ हमें अपने बृहत्तर लक्ष्यों को नजरों से ओझल नहीं होने देना चाहिए, चाहे हम हाथी की मन्थर गति से चलें या टाइगर की तरह दौड़ें। मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि एक समाज के रूप में यदि हम निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आक्रामक और दृढ़ इच्छाशक्ति पैदा कर लें - अर्थात् एक टाइगर की मारक प्रवृत्ति प्राप्त कर लें - तो हम इस दुनिया में अपना उचित स्थान अवश्य बना लेंगे।

संदर्भ:

अय्यर, स्वामिनाथन अंकलेसरिया (2012), 'द एलिफैंट दैट बिकेम ए टागइरः 20 ईयर्स ऑफ एकोनॉमिक रिफॉर्म इन इंडिया', कैटो इंस्टीटयूट डेवलपमेंट पॉलिसी एनलिसिस, अंक 13 जुलाई 20, 2011 ।

ऐकरलोफ, जॉर्ज ए ऐण्ड पॉल एम, रोमर (1993), 'लूटिंगः द इकोनोमिक अंडरवर्ल्ड ऑफ बैंकरप्टसी फॉर प्रॉफिट', ब्रूकिंग्स पेपर्स ऑन एकोनोमिक ऐक्टिविटी, खंड 1993, अंक 2 (1993), पृष्ठ 1-73 ।

बोसवर्थ, बैरी ऐंड सुज़ान एम कॉलिन्स (2007) 'एकाउंटिंग फॉर ग्रोथ - कम्पेयरिंग चाइना ऐंड इंडिया', एन बी ई आर वर्किंग पेपर 12943, फरवरी।

थरूर, शशि (2007), द एलिफैन्ट, द टाइगर ऐंड द सेलफोनः रिफलेक्शन्स ऑन इंडियाः द एमर्जिंग ट्वेंटीफर्स्ट सेन्चुरी पॉवर, न्यूयार्क - आर्केड पब्लिशर्स।

सुब्बाराव, दुव्वुरी (2011) ''रीजिगिंग द एलिफैन्ट डान्स'' हक्सर मेमोरियल लेक्चर, भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. सुब्बाराव द्वारा सेन्टर फॉट रिसर्च इन रूरल ऐंड इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट, चंडीगढ़ में 25 नवंबर 2011 को दिया गया व्याख्यान, आरबीआई बुलेटिन में दिसंबर 2011 में पुनर्मुद्रित, पृष्ठ 2041-48।

वर्ल्ड बैंक ऐंड आईएफसी (2012), डूइंग बिज़नेस 2013ः स्मार्टर रेग्यूलेशन्स फॉर स्माल ऐंड मीडियम एंटरप्राइज़ेस, वाशिंगटन, विश्व बैंक।